ISSN No. 2394-9996

स्त्री संघर्ष का सफर `अन्या से अनन्या`

प्रा. डॉ. आहेर संगिता एकनाथराव
(हिंदी विभागाध्यक्ष)
महिला कला महाविद्यालय, गेवराई
जि. बीड (महाराष्ट्र).

जो बीता, जो सहा, जो किया, जो सही है, जो गलत है सबकुछ वैसेही पाठकों के सामने रखने का प्रामाणिक प्रयास है यह आत्मकथा। निरंन्तर संघर्षरत स्त्री का सफर है `अन्या से अनन्या` एक ऐसा सफर जो खुद को साबित करना चाहता है और अनन्या की ओर दर्शित करते हुए, प्रवाहित होते हुए खुद को कभी - कभी असहाय सा परिस्थितियों पर छोड़ देता है। एक ऐसा व्यक्तित्व जो सती के आदर्श में अपने आपको ढालने के बजाए अपने अन्दर की `स्त्री` को अधिक महत्व देकर आत्मसम्मान और समाधान पाता है और इसी `स्त्रीत्व` का सम्मान करना चाहता है।

`अन्या से अनन्या` इस आत्मकथा में प्रभाजी ने कोई दुराव छिपाव नहीं रखा है। अपने जीवन के प्रामाणिक ब्योरे उन्होने प्रस्तुत किये हैं। प्रभा जी का यह कहना बिल्कुल सही लगता है कि, उपन्यास से अधिक दिनों तक आत्मकथा जीवित रहती है। क्योंकि कल्पना विन्यास की जगह इसमें अधिक प्रमाणिकता और साहस होता है। आत्मकथा के बारे में प्रभा जी लिखती हैं, ``आत्मकथा लिखना तो स्ट्रीप्टीस का नाच है। आप चौराहे पर एक - एक करके कपड़े उतारते जाते हैं। लिखने वाले के मन में आत्म-प्रदर्शन का भाव किसी न किसी रूप में मौजूद रहता है, मन के किसी कोने में हल्की - सी चाहत रहती है कि लोग उसे गलत नहीं समझे कि जो कुछ भी वह लिख रहा है उसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाय, पर दर्शक वृंद अपना - अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र्य हैं। उनका मन, वे इस नाच को देखें या फिर पलटकर चला जाए।``[1]

प्रभा का व्यक्तित्व विद्रोहात्मक और महत्वाकांक्षी रहा है। बचपन में सहमकर और चुपचाप रहनेवाली प्रभा बड़ी होकर शब्दों के सहारे उसके बचपन की दीनता को तथा अनाथपन को आत्मविश्वास से सामने रखती है। उसके बचपन का कोई हसीन पल उसे याद नहीं आता न कोई सुनहरी बात याद आती है। उसका

बचपन तो बस नीम का कड़वा रस था, एक अनचाहा पाश था उसके परिवार के लिए जिसे कोई नहीं चाहता था। सिवाय दाई माँ के उसे किसीने प्यार नहीं किया। सगी माँ जब उसे प्यार नहीं कर सकी तो और सदस्यों की बात ही क्या थी? क्योंकि यह माँ की तरह या गीता की तरह गोरी नहीं थी। घंटों तरसती थी यह बच्ची दरवाजे के पास खड़ी रहकर इंतजार करती की, अब माँ मुझे अन्दर बुलायेगी, लेकिन उसका बचपन इंतजार करते - करते बीत गया। भाई - बहनों के लिए भी वह खिलौना थी, सब हँसते थे उसपर। नौ साल की थी जब भाई द्वारा वह पीडित हुई। अंधेरे के इस जुगनु को कोई देख नहीं पाया था.. बचपन की त्रासदी को उसने झेला कैसे और वह जिन्दा रही कैसे? इस बात का प्रभाजी को आश्चर्य होता है। वह सोचती है, ``कैसा अनाथ बचपन था। अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं। मैं चुपचाप घंटो उनके कमरे के दरवाजे पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें। शायद ..... हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला लें। मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच।''[2]

जिस माँ से प्रभाजी प्रताड़ित एवं आहत हुई है उसी माँ से वह प्रोत्साहित एवं प्रेरित भी हुई है। पति का साया उठ गया था, घर के हालात भी कुछ ठीक नहीं थे, फिर भी उनका अपने बच्चों से कहना था, ``कम खा लेना बेटा पर बेईमानी मत करना।''[3] माँ का ईमानदार और विद्रोही स्वभाव प्रभा जी के व्यक्तित्व में भी आ गया था। वह कहा करती, ``चाँद को छूने की कल्पना करो तो खजूर के पेड़ तक तो पहुँचोगे। अरे तुम्हारी चाहना ही सीमित रहेगी तो आगे कैसे बढ़ोगे? जो मिले उसीमें सन्तोष खोज लेना यह भी कोई बात हुई?''[4] शायद अम्मा की यही महत्वाकांक्षा प्रभाजी को विरासत में मिली थी।

प्रभा के जीवन पर उसके गुरू दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर डॉ. चटर्जी का बहुत बड़ा प्रभाव था। उन्होंने उसे अभीप्सा, जिज्ञासा और संकल्प इन तीन बातों को समझाया था। दर्शन का अभ्यास करती प्रभा बार-बार गुरू से मन की शंकाएँ पूछती थी और गूरू के मार्गदर्शन से उसका समाधान होता था। प्रभा केवल परिक्षार्थी नहीं थी बल्कि उसका अध्ययन, मनन और चिन्तन अत्यन्त गहन था। उसकी इसी ज्ञानपिपासा से वे भी प्रभावित थे। गुरू के गुरूदक्षिणा माँगने पर असंमंजस में पड़ी प्रभा को गुरू समझाते हैं, ``स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आँसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बड़ा अपराध है। अपनी नियति को बदल सको तो वह एकलव्य की गुरूदक्षिणा होगी।''[5] गुरू का समझाना कि अपनी आत्मा को ही अपना गुरू मानो किसी बाहरी व्यक्ति को नहीं प्रभा को बड़ा ही प्रभावित करता है। प्रभा किसी पुरूष का इतना स्वच्छ और पारदर्शी रूप देखकर चकित रह जाती है।

प्रभाजी अपने व्यवसाय की वजह से देश - विदेश में घूमती है। इस यात्रा दौरान मिली हुई स्त्रियों के बारे में वह सोचती है। अम्मा, भाभी यहाँ तक की उसके स्कूल की शिक्षिकाएँ जो उसके लिए प्रेरणास्त्रोत थी वह भी आँसूओं से भरी हुई थी। उसे लगता है क्या सभी स्त्रियाँ रोने के लिए ही पैदा हुई है? मन्नू भंडारी जो उसे पढ़ाती थी तथा अन्य शिक्षिकाओं की आँखो में भी जब वह आँसू देखती है तो लिखती है, ``गलत पुरूष के हाथ में पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है।``[6] देश और विदेश में भी `औरत` की एक जैसी परिस्थिती देखकर प्रभाजी हैरान हो जाती है। एलिजा, मरील, आइलिन, इस अमेरिकी औरतों के जीवन का भयानक सत्य जानकर वह हैरान हो जाती है। इनका पारिवारिक विघटन और संवेदनशून्यता की पीड़ा को वह देखती है। इन स्त्रियों से मिलकर वह यह अनुभव करती है कि यहाँ भी नारी अकेलेपन की त्रासदी सें प्रताड़ित है। स्त्री का `उपेक्षिता` का रूप देश में भी और विदेश में भी कम अधिक मात्रा में उसे दिखाई देता है।

दर्शनशास्त्र में एम.ए. और पीएच.डी प्राप्त प्रभा को उसकी व्यापारिक बुद्धि ने कभी चैन से नहीं बैठने दिया। यही व्यापारिक बुद्धि उसके अकेलेपन की दवा थी। जो कभी-कभी दिल से नहीं दिमाग से सोचकर उसे सक्षमता की ओर अग्रेसर कर रह रही थी। वह व्यावसाय की व्यावहारिकता को अच्छी तरह से जानती है। अपने निर्णय पर अडिग प्रभाजी ने जब डॉक्टर सर्राफ से रिश्ता जोड़ा तब भी उसने अपने नफा - नुकसान के बारे में नहीं सोचा। जब मन से उन्हें वह अपना मान चुकी थी तो उनके सारे अन्याय को जानते हुए भी उन्हें छोड़ना उनके लिए असंभव था। डॉक्टर के आत्मीय सम्बन्धों को लेकर प्रभा के मन में अनेक प्रश्न निर्माण होते हैं, ``मै क्या लगती थी डॉक्टर साहाब की? मैं क्यों ऐसे उनके साथ चली आई? प्रियतमा, मिस्ट्रेस, शायद आधी पत्नी, पूरी पत्नी तो मैं कभी नहीं बन सकती क्योंकि एक पत्नी पहले से मौजूद थी। वे बाल-बच्चों वाले व्यक्ति थे। पिछले बीस सालों से मैं उनके साथ थी मगर किस रूप में?.... इस रिश्ते को नाम नही दे पाऊँगी?`` आत्मनिर्भर प्रभा असंमंजस में जरूर पड़ती है, परन्तु अपने निर्णय पर वह अडिग है। उसकी व्यापारिक बुद्धि इस रिश्ते पर बिल्कूल हावी नहीं होती है बल्कि एक सहृदया स्त्री की भूमिका वह लेती है। उसे अच्छी तर से मालूम है वह क्या है, क्या कर रही है और उसे क्या करना चाहिए। इसीलिए जब भी पछतावे के क्षण आते है तब उसका आत्मविश्वास उसे जीत लेता है। सबकुछ जानते हुए डॉक्टर सर्राफ के साथ जिन्दगी बिताना इसे वह अपनी मूर्खता नहीं मानती न ही अपराध। बचपन से प्रेम से वंचित प्रभा डॉक्टर साहब को उनके स्वार्थों के साथ अपनाती है। उनका कमीनापन उसे कभी-कभी अखरता है फिर भी वह उन्हें छोड़

नहीं पाती क्योंकि उन्हें वह बरगद की छाँव की तरह और सुरक्षा कवच के रूप में महसूस करती है।

प्रभाजी का डॉ. सर्राफ के साथ ही आत्मीय समर्पण ही नहीं था बल्कि उनके परिवार के साथ भी वह जुड़ी रहती है। आजीवन अविवाहिता रहकर डॉ. सर्राफ के साथ समर्पित हो जाती है। उनका स्वार्थ, दखल देने का स्वभाव, शक्की मिजाज, इन सभी दुर्गुणों के साथ प्रभा उन्हें अपनाती है। वह यही सोचती है की, ``जैसा भी है यह व्यक्ति मेरा अपना है। कैसे रहूँगी इस आदमी के बिना।``[8] डॉक्टर सर्राफ के बिना अपने जीवन की कल्पना भी वह नहीं कर पाती है। रो-धोकर, अपने मन को समझाकर वह हर बार उनकी बेतुकी बातों को नजर अन्दाज कर जाती है। डॉक्टर साहब से जुड़ी होने के कारण असहनीय सामाजिक प्रताडना को उसे सहना पड़ता है, ताने सुनने पड़ते है, दूसरी औरत का उपहास झेलना पड़ता है फिर भी प्रभाजी अपने आपको सँभाले हुए है। लेकिन दिन-ब-दिन डॉक्टर साहब का बढ़ता जा रहा दबाव और उसके व्यावसाय में दखल अन्दाजी से प्रभा तंग आ चुकी थी। एक ओर उसकी व्यापारी बुद्धि उसे चैन से बैठने नहीं दे रही थी, उसे अपनी हैसियत बनानी थी और दूसरी ओर डॉक्टर का ऊसपर दबाव बढ़ता जा रहा था। बाहरी दुनिया में कदम रखकर उसका आत्मविश्वास बढ़ा था और वह अपनी सक्षमता में भी कामयाब हो रही थी। समाज को वह दिखाना चाहती थी की, डॉक्टर साहब से अलग भी उसकी हैसियत है। ``मैं दौड़ रही थी.... और पहलेवाली रिक्तता, शून्यता, व्यर्थता के बहुत कुछ सार्थक पा रही थी। मुझे अपनी इस नई व्यापारिक दुनिया में रस मिल रहा था, काम में सन्तुष्टि थी। हर दिन लगता, मुझे अपनी इस नई व्यापारिक दुनिया में रस मिल रहा था, काम में सन्तुष्टि थी। हर दिन लगता, मैं प्रगति की राह पर एक और कदम आगे बढ़ा रही थी।``[9]

प्रभाजी की कामयाबी से और उन्हें समय न दे पाने से डॉक्टर साहब के अहम् को चोट पहुँच रही थी। प्रभाजी अब सफल व्यापारी महिला बन चुकी थी। डॉक्टर साहब उसके चरित्र पर कीचड़ उछालने से नहीं चूकते थे। वह सोचती है, ``पुरूष कमजोर स्त्री से ही क्यों प्यार करता है?`` और सबल स्त्री से चिढ़ता क्यों है?``[10] स्त्री जैसा त्याग और समर्पण पुरूष क्यों नही करता? यह प्रश्न प्रभाजी के मन में आता है ``औरत जैसे पुरूष के लिए जीती है पुरूष भी क्यों नहीं औरत के लिए जी पाता?``[11]

प्रभा जी बस काम करती जा रही थी, जिन्दगी के पीछे दौड़ रही थी, क्योंकि अपनी नियति को वह जान चुकी थी। उसे विश्वास था इस भाग - दौड़ में एक दिन उसे मुक्ति का मार्ग जरूर मिल जायेगा। उसने हर घटना के तह तक जाकर समझना सीख लिया था।`` यह भी समझ रही थी कि केवल पढ़ने से,

अध्ययन-चिन्तन और लेखन स्त्री स्वतंन्त्र नहीं हो जाती, सामाजिक पंगुता के विरूद्ध क्रोध और विद्रोह की भावना व्यक्त करने से ही मैं व्यक्ति नहीं हो जाऊँगी। संस्कारों से, परम्परा से मुक्ति की यात्रा बहुत लम्बी है और बड़ी कठिन। दो पैसे कमा लेने से ही मुझे निर्णय की स्वतंत्रता मिल जाएगी ऐसा नहीं है। पीढ़ियों से स्त्री की जो छवि बन चुकी है उसको बदलने की शायद मेरे पास भी शक्ति नहीं है।"[12]

प्रभाजी की जिन्दगी का संघर्ष अब भी जारी था। वह आज एक सफल व्यवसायी महिला थी परंतु उपेक्षा उसका पीछा नहीं छोड़ती। डॉक्टर साहब को कैंसर हो जाता है और अब डॉक्टर के साथ उनके परिवार की भी प्रभा जी से अपेक्षा बढ़ जाती है। किसीने कभी उसे यह नहीं पूछा की वह क्या चाहती है। केवल दूसरों की जरूरतें तथा आशा-आकांक्षाओं से ही वह दबी जा रही थी। समाज के नजरिये से उसमें कुछ कमी थी तो बस पति और बच्चे की कमी थी। जिसके बिना वह सफल होकर भी असफल मानी जा रही थी। उसकी अपनी उपलब्धि मानों कोई मायने नही ंरखती थी। इस सम्बन्ध की उपेक्षा से उसका मन झुलस जाता है, परन्तु उसके मन की पीड़ा को वह किसी से बाँट भी नही ंसकती थी। बस, सोच सकती है, "कविता उन दिनों ज्यादा लिखती गई लेकिन कभी-कभी मैं सोचती, कि अर्जुन के विषाद योग पर मैने क्यों नहीं कविता लिखी? अच्छा रहता ... शायद अपनी कविता में मैं कृष्ण सें कहती .... मुझे लेक्चर देनेवाले हे नाथ। पहले मेरी परिस्थिति में जन्म लेकर देखो।"[3]

प्रभाजी के जीवन की यह कैसी विडंबना थी की, बार-बार `दूसरी औरत` की चोट से आहत होना पड़ता था। दूसरी औरत को यह समाज मानवीय संवेदना से क्यों नही देखता? डॉक्टर साहब के साथ वह सभी स्तरों पर जुड़ी हुई थी, मगर उनकी मृत्यु के बाद भी वह `दूसरी औरत` ही रहती है। उनकी अर्थी के फेरे लेने के लिए भी उन्हें कोई नहीं बुलाता। सब आँखे बस उसे घूरते हुए देखती हैं कि वह रोती है या नहीं। लेकिन प्रभा इन सबके सामने रोनेवाली नहीं थी, उसे किसी की सहानुभूति की जरूरत नहीं थी। ये आँसू तो बस उसके अकेलेपन के साथी थे। यहाँ पर भी उसकी प्रताड़ना समाप्त नहीं होती।"उनकी स्मरण सभा में उन्हें कई रूपों में सम्बोधित और याद किया गया। कलकत्ते के वरिष्ठ नागरिक, समाजसेवी, सफल डॉक्टर ...पीछे पत्नी और बच्चों को छोड़कर गए हैं। प्रभा खेतान नामक स्त्री का कहीं भी जिक्र नहीं था।"[14]

निष्कर्षत: हमारे समाज में स्त्री का दोयम स्थान जन्म से लेकर मृत्यु तक उसका पीछा नहीं छोड़ता। क्या सिर्फ `अबला` के कटघरे में कैद स्त्री ही समाज को भाती है? लीक से हटकर वह चलें तो परिवार और समाज उसे प्रताड़ित ही

करेगा? सहना ही उसकी नियति है बोलना नहीं? गार्गी कितनी भी बुद्धिमान क्यों न हो सवाल पूछने पर उसे सर काटने की धमकी ही दी जाती है।

`अन्या से अनन्या` एक ऐसी आत्मकथा है जो अनुभव की प्रामाणिकता की कसौटी पर खरी उतरती है। प्रभा जी का नारी अस्मिता के लिए संघर्ष अपने आप में अद्वितीय है। स्वाभिमानी प्रवृत्ति की, नारी विमर्श पर सक्षमता से लेखन करनेवाली लेखिका प्रभा खेतान की मृत्यु पर जितेंद्र धीर `अक्षर पर्व` पत्रिका में लिखते हैं, ``पार्थिव रूप से वह आज नहीं रही लेकिन अपने स्पष्ट निर्भीक लेखन (बोल्ड राइटिंग) और कलम के जरिए स्त्री स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने वाली जुझारू लिखिका के रूप में हमारे बीच सदा मौजूद रहेंगी।''[15]

संदर्भ सूची :-

1)	प्रभा खेतान	`अन्या से अनन्या` पृ.सं.	255
2)	वही	वही	31
3)	वही	वही	55
4)	वही	वही	169
5)	वही	वही	63
6)	वही	वही	45
7)	वही	वही	8-9
8)	वही	वही	170
9)	वही	वही	210-11
10)	वही	वही	214
11)	वही	वही	223
12)	वही	वही	256
13)	वही	वही	260
14)	वही	वही	287
15)	डॉ. कामिनी तिवारी	प्रभा खेतान के साहित्य में नारी विमर्श	18